10 Class social science History Notes in hindi chapter 4 the Age of Industrialisation अध्याय - 4 औद्योगीकरण का युग

अध्याय - 4

औद्योगीकरण का युग

इस अध्याय की मुख्य बातें :-

पूर्व औद्योगीकरण

औद्योगीकरण की गति

श्रमिकों का जीवन

भारत में कपड़ा उद्योग

औद्योगीकरण की अनूठी बात

औद्योगीकरण का युग :-

जिस युग में हस्तनिर्मित वस्तुएं बनाना कम हुई और फैक्ट्री , मशीन एवं तकनीक का विकास हुआ उसे औद्योगीकरण का युग कहते हैं ।

इसमें खेतिहर समाज औद्योगिक समाज में बदल गई ।

1760 से 1840 तक के युग को औद्योगीकरण युग कहा जाता है जो मनुष्य के लिए खेल परिवर्तन नियम जैसा हुआ

पूर्व औद्योगीकरण :-

यूरोप में औद्योगीकरण के पहले के काल को पूर्व औद्योगीकरण का काल कहते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जाये तो यूरोप में सबसे पहले कारखाने लगने के पहले के काल को पूर्व औद्योगीकरण का काल कहते हैं। इस अवधि में गाँवों में सामान बनते थे जिसे शहर के व्यापारी खरीदते थे।

औद्योगिक क्रांति से पहले :-

औद्योगिक क्रांति मध्य 18 वीं शताब्दी में प्रारंभ हुआ था । परंतु इससे पहले भी इंग्लैंड और यूरोप में अंतरराष्ट्रीय बाजार के लिए बड़े पैमाने पर औद्योगिक उत्पादन होने लगा था ।

evidyarthi

परंतु इसे फैक्ट्रियों में नहीं बनाया जाता था बल्कि हाथों से बनाया जाता था और व्यापारियों द्वारा बेचा जाता । यानी तभी यह सब व्यापारियों के नियंत्रण में था ।

औद्योगीकरण के इसी चरण को इतिहासकार आदि औद्योगीकरण कहते हैं । यहां आदि का अर्थ किसी भी वस्तु की पहली या प्रारंभिक अवस्था का संकेत ।

17 वीं और 18 वीं सदी में क्या हुआ :-

आबादी
भूमंडलीकरण
मांग

अब शाहरी इलाके के जो व्यापारी , जनसंख्या के मांग के अनुसार उत्पादन को नहीं बढ़ा पा रहे थे । जिसकी वजह से वे ग्रामीण इलाकों में जाना प्रारंभ कर दिया वहां पर उन्होंने किसानों को रोजगार दिया और उत्पादन में वृद्धि कि ।

अब सवाल आता है कि किसानों ने नया रोजगार स्वीकार क्यों किया गांव के गरीब काश्तकार और दस्तकार सौदागरों के लिए काम करने लगे क्योंकि अब खुले खेत जा रहे थे और कॉमनस की बाड़ाबंदी की जा थी । छोटे किसान की जमीन खत्म हो रहे थी इसलिए गरीब किसान आमदनी के नए स्रोत ढूंढ रहे थे ।

व्यापारियों का गाँवों पर ध्यान देने का कारण :-

शहरों में ट्रेड और क्राफ्ट गिल्ड बहुत शक्तिशाली होते थे। इस प्रकार के संगठन प्रतिस्पर्धा और कीमतों पर अपना नियंत्रण रखते थे। वे नये लोगों को बाजार में काम शुरु करने से भी रोकते थे। इसलिये किसी भी व्यापारी के लिये शहर में नया व्यवसाय शुरु करना मुश्किल होता था। इसलिये वे गाँवों की ओर मुँह करना पसंद करते थे।

ब्रिटेन में पूर्व औद्योगीकरण के लक्षण :-

शहर के व्यापारी गाँवों के किसानों को पैसे देते थे। वे किसानों को अंतर्राष्ट्रीय बाजार के लिये उत्पाद बनाने के लिये प्रोत्साहित करते थे।

गाँवों में जमीन कम पड़ने लगी थी। जनसंख्या बढ़ रही थी जिसकी जरूरत जमीन के छोटे टुकड़ों से पूरी नहीं होती थी। इसलिये किसानों को आय के अतिरिक्त साधनों की तलाश थी।

पूर्व औद्योगीकरण के समय विनिमयों का एक जाल फैला हुआ था जिसे व्यापारी लोग नियंत्रित करते थे। सामान का उत्पादन वैसे किसान करते थे जो कारखानों में काम करने की बजाय अपने खेतों में काम करते थे। अंतिम उत्पाद कई हाथों से होता हुआ लंदन के बाजारों तक पहुँचता था। फिर इन उत्पादों को लंदन से अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में भेजा जाता था।

कारखानों की शुरुआत :-

सबसे पहले इंगलैंड में कारखाने 1730 के दशक में बनना शुरु हुए। अठारहवीं सदी के आखिर तक पूरे इंगलैड में जगह जगह कारखाने दिखने लगे। 1760 में ब्रिटेन में 2.5 मिलियन पाउंड

का कपास आयातित होता था। 1787 तक यह मात्रा बढ़कर 22 मिलियन पाउंड हो गई थी।

कारखानों से लाभ :-

कारखानों के खुलने से कई फायदे हुए। श्रमिकों की कार्यकुशलता बढ़ गई। अब नई मशीनों की सहायता से प्रति श्रमिक आधिक मात्रा में और बेहतर उत्पाद बनने लगे। औद्योगीकरण की शुरुआत मुख्य रूप से सूती कपड़ा उद्योग में हुई। कारखानों में श्रमिकों की निगरानी और उनसे काम लेना अधिक आसान हो गया।

औद्योगिक परिवर्तन की रफ्तार :-

ब्रिटेन में सूती कपड़ा और धातु उद्योग सबसे गतिशील उद्योग थे। औद्योगीकरण के पहले दौर में (1840 के दशक तक) सूती कपड़ा उद्योग अग्रणी क्षेत्रक था। रेलवे के प्रसार के बाद लोहा इस्पात उद्योग में तेजी से वृद्धि हुई। रेल का प्रसार इंगलैंड में 1840 के दशक में हुआ और उपनिवेशों में यह 1860 के दशक में हुआ। 1873 आते आते ब्रिटेन से लोहा और इस्पात के निर्यात की कीमत 77 मिलियन पाउंड हो गई। यह सूती कपड़े के निर्यात का दोगुना था।

लेकिन औद्योगीकरण का रोजगार पर खास असर नहीं पड़ा था। उन्नीसवीं सदी के अंत तक पूरे कामगारों का 20% से भी कम तकनीकी रूप से उन्नत औद्योगिक क्षेत्रक में नियोजित था। इससे यह पता चलता है कि नये उद्योग पारंपरिक उद्योगों को विस्थापित नहीं कर पाये थे।

सूती कपड़ा और धातु उद्योग पारंपरिक उद्योगों में बदलाव नहीं ला पाये। लेकिन पारंपरिक उद्योगों में भी कई परिवर्तन हुए। ये परिवर्तन बड़े ही साधारण से दिखने वाले लेकिन नई खोजों के कारण हुए। इस तरह के उद्योगों के उदाहरण हैं; खाद्य संसाधन, भवन निर्माण, बर्तन निर्माण, काँच, चमड़ा उद्योग, फर्नीचर, आदि।

जैसा कि आज भी हम देखते हैं; नई तकनीकों को पैर जमाने में काफी वक्त लगा। मशीनें महंगी होती थीं और उनके मरम्मत में भी काफी खर्च लगता था। इसलिये व्यापारी और उद्योगपति नई मशीनों से दूर ही रहना पसंद करते थे। आविष्कारकों या निर्माताओं के दावों के विपरीत नई मशीनें बहुत कुशल भी नहीं थीं।

इतिहासकार इस बात को मानते हैं कि उन्नीसवीं सदी के मध्य का एक आम श्रमिक कोई मशीन चलाने वाला नहीं बल्कि एक पारंपरिक कारीगर या श्रमिक होता था।

मानव शक्ति और भाप की शक्ति :-

उस जमाने में श्रमिकों की कोई कमी नहीं होती थी। इसलिये श्रमिकों की किल्लत या अधिक पारिश्रमिक की कोई समस्या नहीं थी। इसलिये महंगी मशीनों में पूँजी लगाने की अपेक्षा श्रमिकों से काम लेना ही बेहतर समझा जाता था।

मशीन से बनी चीजें एक ही जैसी होती थीं। वे हाथ से बनी चीजों की गुणवत्ता और सुंदरता का मुकाबला नहीं कर सकती थीं। उच्च वर्ग के लोग हाथ से बनी हुई चीजों को अधिक पसंद करते थे।

लेकिन उन्नीसवीं सदी के अमेरिका में स्थिति कुछ अलग थी। वहाॅ पर श्रमिकों की कमी होने के कारण मशीनीकरण ही एकमात्र रास्ता बचा था।

श्रमिकों का जीवन :-

काम की तलाश में भारी संख्या में लोग गाँवों से शहरों की ओर पलायन कर रहे थे। नौकरी मिलना इस बात पर निर्भर नहीं करता था कि किसी को क्या काम आता है। यह इस बात पर निर्भर करता था कि किसी के कितने अधिक दोस्त या रिश्तेदार पहले से ही वहाँ काम पर लगे हैं। जान पहचान के बगैर नौकरी मिलना बहुत मुश्किल होता था। किसी किसी को महीनों तक नौकरी पाने का इंतजार करना होता था। ऐसे लोग बेघर होते थे जिन्हें पुलों या रैन बसेरों में अपनी रातें बितानी पड़ती थी। कई निजी लोगों ने भी रैन बसेरे बनवाये थे। गरीबों के लिए बनी पूअर लॉ अथॉरिटी ऐसे लोगों के लिए कैजुअल वार्ड की व्यवस्था करती थी।

कई नौकरियाँ साल के कुछ गिने चुने महीनों में ही मिलती थीं। जैसे ही वे व्यस्त महीने समाप्त हो जाते थे तो बेचारे गरीब फिर से सड़क पर आ जाते थे। उनमें से कुछ तो अपने गाँव लौट जाते थे लेकिन ज्यादातर शहर में ही रुक जाते थे ताकि छोटे मोटे काम पा सकें।

स्पिनिंग जेनी मशीन का विरोध :-

उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में पारिश्रमिक में थोड़ा सा इजाफा हुआ था। लेकिन विभिन्न क्षेत्रकों के आँकड़े प्राप्त करना मुश्किल है क्योंकि उनमें हर साल काफी उतार चढ़ाव होता था। किसी भी श्रमिक के जीवन स्तर पर नियोजन की अवधि का पूरा असर पड़ता था। यदि किसी को साल के बारहों महीने काम मिल जाता था तो उसका जीवन सुखी रहता था। यदि किसी को साल के दो चार महीने ही काम मिलता था उसकी समस्याएँ जैसी की तैसी रहती थीं। उन्नीसवीं सदी के मध्य तक अच्छे दौर में भी शहरों की आबादी का लगभग 10% अत्यधिक गरीब हुआ करता था। आर्थिक मंदी के दौर में बेरोजगारी बढ़कर 35 से 75% के बीच हो जाती थी।

कई बार बेरोजगारी के डर से श्रमिक लोग नई तकनीक का जमकर विरोध करते थे। उदाहरण के लिए जब स्पिनिंग जेनी को लाया गया तो महिलाओं ने इन नई मशीनों को तोड़ना शुरू किया। उन महिलाओं को अपना रोजगार छिन जाने का डर था।

1840 के दशक के बाद शहरों में भवन निर्माण में तेजी आई। इससे रोजगार के नये अवसर पैदा हुए। 1840 में यातायात के क्षेत्र में श्रमिकों की संख्या दोगुनी हो गई जो आने वाले तीस वर्षों में फिर से दोगुनी हो गई।

उपनिवेशो में औद्योगीकरण :-

आइए अब भारत पर नजर डाले और देखे की उपनिवेश में औद्योगीकरण कैसे होता है

भारत का कपड़ा उद्योग का युग :-

अठारहवीं सदी के मध्य तक ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भारत में अपना बिजनेस जमा लिया था। इस अवधि में व्यापार के पुराने केंद्रों (जैसे सूरत और हुगली) का पतन हो चुका था, और

व्यापार के नये केंद्रों (जैसे कलकत्ता और बम्बई) का उदय हुआ।

जब एक बार ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अपनी राजनैतिक प्रभुता स्थापित कर ली तो इसने व्यापार पर अपने एकाधिकार को जताना शुरू कर दिया।

कम्पनी ने कपड़ा व्यवसाय से जुड़े हुए पारंपरिक व्यापारियों और दलालों को उखाड़ना शुरू किया। उसके बाद कम्पनी ने बुनकरों पर सीधा नियंत्रण बनाने की कोशिश की। इस काम के लिए लोगों को वेतन पर रखा गया। ऐसे लोगों को गुमाश्ता कहा जाता था। गुमाश्ता का काम था बुनकरों के काम की निगरानी करना, आने वाले माल का संग्रहण करना और कपड़े की क्वालिटी की जाँच करना।

कम्पनी यह कोशिश भी करती थी कि बुनकर किसी दूसरे ग्राहक के साथ डील न कर लें। इस काम को पुख्ता करने के लिये एडवांस के सिस्टम का सहारा लिया जाता था। इस सिस्टम के तहत बुनकरों को कच्चे माल खरीदने के लिए कर्ज दिया जाता था। जब कोई बुनकर कर्ज ले लेता था तो इस बात के लिये बाध्य हो जाता था कि किसी अन्य व्यापारी को अपना माल न बेचे।

एडवांस के इस नये सिस्टम ने बुनकरों के लिए कई समस्याएँ खड़ी कर दी। पहले वे खाली समय में थोड़ी बहुत खेती कर लेते थे ताकि परिवार का पेट भरने के लिये काम भर का अनाज उगा सकें। अब उनके पास खाली समय नहीं बचता था। उन्हें अपनी जमीन काश्तकारों को देनी पड़ती थी।

पारंपरिक व्यापारियों के विपरीत गोमाश्ता बाहरी आदमी होता था। उसका गाँव में कोई नातेदार रिश्तेदार नहीं होता था। वह सिपाहियों और चपरासियों के साथ आता था। समय पर काम न पूरा होने की स्थिति में बुनकरों को दंड भी देता था। गोमाश्ता अक्सर हेकड़ी दिखाया करता था। कई बार गोमाश्ता और बुनकरों के बीच लड़ाई भी हो जाती थी।

एडवांस के सिस्टम के कारण आये बदलाव :-

एडवांस के सिस्टम के कारण कई बुनकर कर्ज के जाल में फँस गये। कर्णाटक और बंगाल के कई स्थानों पर तो बुनकर अपने गाँव छोड़कर दूसरे गाँवों में चले गये ताकि अपना करघा लगा सकें। कई बुनकरों ने एडवांस लेने से मना कर दिया, अपनी दुकान बंद कर दी और खेती करने लगे।

मैनचेस्टर का भारत में प्रकोप :-

उन्नीसवीं सदी की शुरुआत से ही भारत से कपड़ों के निर्यात में कमी आने लगी। 1811 – 12 में भारत से होने वाले निर्यात में सूती कपड़े की हिस्सेदारी 33% थी जो 1850 – 51 आते आते मात्र 3% रह गई।

ब्रिटेन के निर्माताओं के दबाव के कारण सरकार ने ब्रिटेन में इंपोर्ट ड्यूटी लगा दी ताकि इंगलैंड में सिर्फ वहाँ बनने वाली वस्तुएँ ही बिकें। ईस्ट इंडिया कम्पनी पर भी इस बात के लिए दबाव डाला गया कि वह ब्रिटेन में बनी चीजों को भारत के बाजारों में बेचे। अठारहवीं सदी के अंत तक भारत में सूती कपड़ों का आयात न के बराबर था। लेकिन 1850 आते-आते कुल

आयात में 31% हिस्सा सूती कपड़े का था। 1870 के दशक तक यह हिस्सेदारी बढ़कर 70% हो गई।

भारत में हाथ से बने सूती कपड़ों की तुलना में मैनचेस्टर की मशीन से बने हुए कपड़े अधिक सस्ते थे। इसलिये बुनकरों का मार्केट शेअर गिर गया। 1850 का दशक आते आते भारत के सूती कपड़े के अधिकांश केंद्रों में भारी गिरावट आ गई।

1860 के दशक में संयुक्त राज्य अमेरिका में गृह युद्ध शुरू हो चुका था। इसलिए वहाँ से ब्रिटेन को मिलने वाले कपास की सप्लाई बंद हो चुकी थी। इसके परिणामस्वरूप ब्रिटेन को भारत की ओर मुँह करना पड़ा। अब भारत से कपास ब्रिटेन को निर्यात होने लगा। इससे भारत के बुनकरों के लिए कच्चे कपास की भारी कमी हो गई।

उन्नीसवीं सदी के अंत तक भारत में भी सूती कपड़े के कारखाने खुलने लगे। भारत के पारंपरिक सूती कपड़ा उद्योग के लिए यह किसी आखिरी आघात से कम न था।

भारत में कारखानों की शुरुआत :-

बम्बई में पहला सूती कपड़ा मिल 1854 में बना और उसमें उत्पादन दो वर्षों के बाद शुरू हो गया। 1862 तक चार मिल चालू हो गये थे। उसी दौरान बंगाल में जूट मिल भी खुल गये। कानपुर में 1860 के दशक में एल्गिन मिल की शुरुआत हुई। अहमदाबाद में भी इसी अवधि में पहला सूती मिल चालू हुआ। मद्रास के पहले सूती मिल में 1874 में उत्पादन शुरू हो चुका था।

शुरू के व्यवसायी :-

भारत के कई बिजनेस ग्रुप के इतिहास में चीन के साथ होने वाला व्यापार छुपा हुआ है। अठारहवीं सदी के आखिर से ब्रिटिश भारत ने अफीम का निर्यात चीन को करना शुरू किया और वहाँ से चाय का आयात करना शुरू किया। इस काम में कई भारतीय व्यापारियों ने बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया। वे पूँजी लगाते थे, माल मंगवाते थे और फिर माल को भेजते थे। जब उन व्यापारियों ने अच्छी पूँजी जमा कर ली तो वे भारत में औद्योगिक उपक्रम बनाने के सपने भी देखने लगे।

ऐसे लोगों में द्वारकानाथ टैगोर एक अग्रणी व्यक्ति थे जिन्होंने 1830 और 1840 के दशक में उद्योग लगाने शुरू किये। टैगोर का उद्योग 1840 के व्यापार संकट के दौर में तबाह हो गया। लेकिन उन्नीसवीं सदी के आखिरी दौर में कई व्यापारी सफल उद्योगपति हो गये। बम्बई में दिनशॉ पेटिट और जमशेदजी नसेरवनजी टाटा जैसे पारसी लोगों ने बड़े बड़े उद्योग स्थापित किये। कलकत्ता में पहला जूट मिल 1917 में एक मारवाड़ी उद्यमी सेठ हुकुमचंद द्वारा खोला गया था। इसी तरह से चीन से सफल व्यापार करने वालों ने बिड़ला ग्रुप को बनाया था।

बर्मा, खाड़ी देशों और अफ्रिका के व्यापार नेटवर्क के रास्ते भी पूँजी जमा की गई थी।

भारत के व्यवसाय पर अंग्रेजों का ऐसा शिकंजा था कि उसमें भारतीय व्यापारियों को बढ़ने के लिए अवसर ही नहीं थे। पहले विश्व युद्ध तक भारतीय उद्योग के के अधिकतम हिस्से पर यूरोप की एजेंसियों की पकड़ हुआ करती थी।

मजदूर कहाँ से आते थे?

ज्यादातर औद्योगिक क्षेत्रों में आस पास के जिलों से मजदूर आते थे। इनमें से अधिकांश मजदूर आस पास के गाँवों से पलायन करके आये थे। फसल की कटाई और त्योहारों के समय वे अपने गाँव भी जाते थे ताकि अपनी जड़ों से भी जुड़े रहें। ऐसा आज भी देखने को मिलता है। दिल्ली और पंजाब में काम करने वाले मजदूर छुट्टियों में बिहार और उत्तर प्रदेश वापस जाते हैं।

कुछ समय बीतने के बाद, लोग काम की तलाश में अधिक दूरी तक भी जाने लगे। उदाहरण के लिए यूनाइटेड प्रोविंस के लोग भी बम्बई और कलकत्ता की तरफ पलायन करने लगे।

लेकिन काम मिलना आसान नहीं होता था। उद्योगपति अक्सर लोगों को काम पर रखने के लिए जॉबर की मदद लेते थे जो किसी प्लेसमेंट कंसल्टेंट की तरह काम करता था। अक्सर कोई पुराना और भरोसेमंद मजदूर जॉबर बन जाता था। जॉबर अक्सर अपने गाँव के लोगों को प्रश्रय देता था। वह उन्हें शहर में बसने में मदद करता था और जरूरत के समय कर्ज भी देता था। इस तरह से जॉबर एक प्रभावशाली व्यक्ति बन गया था। वह लोगों से बदले में पैसे और उपहार माँगता था और मजदूरों के जीवन में भी दखल देता था।

औद्योगिक विकास का अनूठापन :-

यूरोप की मैनेजिंग एजेंसी कुछ खास तरह के उत्पादों में ही रुचि दिखाती थी। वे अपना ध्यान चाय और कॉफी के बागानों, खनन, नील और जूट पर लगाती थीं। ऐसे उत्पाद की जरूरत मुख्य रूप से निर्यात के लिए होती थी और उन्हें भारत में बेचा नहीं जाता था।

भारत के व्यवसायी यहाँ के बाजार में मैनचेस्टर के सामानों से प्रतिस्पर्धा से बचना चाहते थे। उदाहरण के लिए वे सूत के मोटे कपड़े बनाते थे जिनका इस्तेमाल या तो हथकरघा वाले करते थे या जिनका निर्यात चीन को होता था।

बीसवीं सदी के पहले दशक तक औद्योगीकरण के ढ़र्रे पर कई बदलावों का प्रभाव पड़ चुका था। यह वह समय था जब स्वदेशी आंदोलन जोर पकड़ रहा था। औद्योगिक समूहों ने संगठित होना शुरू कर दिया था ताकि सरकार से अपने सामूहिक हितों की बात कर सकें। उन्होंने सरकार पर आयात शुल्क बढ़ाने और अन्य रियायतें देने के लिए दबाव डाला। यह वह समय था जब भारत से चीन को होने वाला भारतीय धागे का निर्यात घट रहा था। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि चीनी और जापानी मिलों के उत्पाद ने चीन के बाजार को भर दिया था। भारतीय उत्पादकों ने सूती धागे को छोड़कर वस्त्र बनाने पर अधिक जोर दिया। 1900 और 1912 के बीच भारत में सूती कपड़े का उत्पादन दोगुना हो गया।

पहले विश्व युद्ध तक उद्योग के विकास की दर धीमी थी। युद्ध ने स्थिति बदल दी। ब्रिटेन की मिलें सेना की जरूरतें पूरा करने में व्यस्त हो गईं। इससे भारत में आयात घट गया। भारत की मिलों के सामने एक बड़ा घरेलू बाजार तैयार था। भारत की मिलों को ब्रिटेन की सेना के लिए सामान बनाने के लिए भी कहा गया। इस तरह से घरेलू और विदेशी बाजारों में माँग बढ़ गई। इससे उद्योग धंधे में तेजी आ गई।

युद्ध खत्म होने के बाद भी मैनचेस्टर यहाँ के बाजार में अपनी खोई हुई पकड़ दोबारा नहीं बना पाया। अब ब्रिटेन के उद्योग संयुक्त राज्य अमेरिका, जर्मनी और जापान से टक्कर लेने की स्थिति में नहीं थे।

लघु उद्योगों का वर्चस्व :-

उद्योग में वृद्धि के बावजूद अर्थव्यवस्था में बड़े उद्योगों का शेअर बहुत कम था। लगभग 67% बड़े उद्योग बंगाल और बम्बई में थे। देश के बाकी हिस्सों में लघु उद्योग का बोलबाला था। कामगारों का एक बहुत छोटा हिस्सा ही रजिस्टर्ड कम्पनियों में काम करता था। 1911 में यह शेअर 5% था और 1931 में 10%.

बीसवीं सदी में हाथ से होने वाले उत्पाद में इजाफा हुआ। हथकरघा उद्योग में लोगों ने नई टेक्नॉलोजी को अपनाया। बुनकरों ने अपने करघों में फ्लाई शटल का इस्तेमाल शुरू किया। 1941 आते आते भारत के 35% से अधिक हथकरघों में फ्लाई शटल लग चुका था। त्रावणकोर, मद्रास, मैसूर, कोचिन और बंगाल जैसे मुख्य क्षेत्रों में तो 70 से 80% हथकरघों में फ्लाई शटल लगे हुए थे। इसके अलावा और भी कई नये सुधार हुए जिससे हथकरघा के क्षेत्र में उत्पादन क्षमता बढ़ गई थी।

बाजार में होड़ :-

ग्राहकों को रिझाने के लिए उत्पादक कई तरीके अपनाते थे। ग्राहक को आकर्षित करने के लिए विज्ञापन एक जाना माना तरीका है।

मैनचेस्टर के उत्पादक अपने लेबल पर उत्पादन का स्थान जरूर दिखाते थे। 'मेड इन मैनचेस्टर' का लबेल क्वालिटी का प्रतीक माना जाता था। इन लेबल पर सुंदर चित्र भी होते थे। इन चित्रों में अक्सर भारतीय देवी देवताओं की तस्वीर होती थी। स्थानीय लोगों से तारतम्य बनाने का यह एक अच्छा तरीका था।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध तक उत्पादकों ने अपने उत्पादों को मशहूर बनाने के लिए कैलेंडर बाँटने भी शुरू कर दिये थे। किसी अखबार या पत्रिका की तुलना में एक कैलेंडर की शेल्फ लाइफ लंबी होती है। यह पूरे साल तक ब्रांड रिमाइंडर का काम करता था।

भारत के उत्पादक अपने विज्ञापनों में अक्सर राष्ट्रवादी संदेशों को प्रमुखता देते थे ताकि अपने ग्राहकों से सीधे तौर पर जुड़ सकें।

evidyarthi